त्रिविधा काव्यसमीक्षा

लेखकः

प्रो० रामप्रताप वेदालङ्कार

प्रकाशिका

प्रो० वेदकुमारी घई

15/2 त्रिकूटा नगर, जम्मू तवी

प्रो० बद्रीनाथ कल्ला महाभागानां
करकमलेषु सप्रश्रयम्
उपायनीक्रियते
रामप्रतापः
1-6-2005

त्रिविधा काव्यसमीक्षा

प्रो० रामप्रताप वेदालङ्कार

पूर्वाचार्य एवं अध्यक्ष

संस्कृत विभाग

जम्मूविश्वविद्यालय, जम्मू तवी

२००४

प्रकाशिका

प्रो० वेदकुमारी घई
15/2 त्रिकूटा नगर,
जम्मू तवी

मूल्य : 12 रुपये

मुद्रक

वी० वी० आर० आई० प्रेस,
साधु आश्रम, होश्यारपुर - १४६ ०२१
दूरभाष : २३१३५३

विषयपरिचय

आचार्य भरतमुनि से लेकर आधुनिक आचार्यों ने अपनी कृतियों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में चमत्कारतत्त्व का निरूपण किया है। इसी प्रकार आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त और क्षेमेन्द्र ने औचित्यतत्त्व का प्रतिपादन किया है।

वर्तमान समय में विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा अन्य शिक्षण-संस्थाओं में संस्कृतसाहित्य सम्बन्धी काव्य, नाटक, नाट्यशास्त्र एवं काव्यशास्त्र के अध्ययन और अध्यापन करते समय रसादि-काव्यतत्त्वों तथा रसादिकाव्यसम्प्रदायों के सम्बन्ध में विस्तार-पूर्वक बताया जाता है। परन्तु इस चर्चा में औचित्य, चमत्कार तथा चमत्कारसम्प्रदाय की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। परिणामतः इनको यथोचित स्थान एवं महत्त्व नहीं मिल पाया है।

इस लघु निबन्ध में भरत से लेकर आधुनिक आचार्यों के समय तक संस्कृत और हिन्दी काव्यशास्त्र में प्रचलित काव्य-समीक्षा के तीन प्रकार बताये हैं।

पहली आत्मतत्त्वप्रधाना समीक्षा का वर्तमान समय में महत्त्व नहीं रह गया है अतएव आजकल दूसरी अङ्गतत्त्वप्रधाना समीक्षा को ही अपनाया जाता है। इस समीक्षा में सबसे बड़ी त्रुटि यह रह जाती है कि इसमें औचित्य और चमत्कार नामक महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का समुचित समावेश नहीं किया जाता। वस्तुतः काव्यगत रसादितत्त्व औचित्यतत्त्व की सहायता से ही काव्य में चमत्कार उत्पन्न कर पाते हैं। रसाद्यौचित्य का चमत्कार के साथ जन्यजनकभाव सम्बन्ध है। रसादि काव्यतत्त्व जनक हैं और चमत्कार जन्य है। इन विचारों से ओतप्रोत तीसरी

औचित्यजचमत्कारतत्त्वप्रधाना समीक्षा को वर्तमान समालोचना में स्थान देने की महती आवश्यकता है। इस परिष्कृत समीक्षापद्धति का निर्माण आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, विश्वेश्वर कविचन्द्र, पण्डितराज जगन्नाथ, छज्जूराम शास्त्री, वागीश्वर विद्यालङ्कार, डा० रेवाप्रसाद एवं डा० कृष्णकान्त चतुर्वेद आदि प्राचीन और नवीन आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित विचारों के आधार पर किया गया है।

इस औचित्य और चमत्कार के विशेष महत्त्व को स्वीकार किये बिना संस्कृतसमीक्षा में परिपूर्णता आनी सम्भव नहीं है। संस्कृतसमीक्षा को सर्वाङ्गीण और व्यापक बनाने के लिए इस ओर विद्वानों का अधिक ध्यान आकर्षित करने के लिए यह विनम्र प्रयास किया गया है।

वैशाखी १३, ४, २००४ रामप्रताप वेदालङ्कार

जम्मू तवी

त्रिविधां काव्यसमीक्षां रामप्रतापनिर्मिताम्।
द्रष्टुमर्हन्ति विद्वांसः कुतूहलविवर्धिनीम्॥

—प्रो० वेदकुमारी घई
प्रकाशिका
पूर्वाचार्या, संस्कृतविभागः,
जम्मू विश्वविद्यालय

त्रिविधा काव्यसमीक्षा

संस्कृत काव्यशास्त्र में तीन प्रकार की समीक्षा प्रचलित है—

(१) आत्मतत्त्वप्रधाना

(२) अङ्गतत्त्वप्रधाना एवं

(३) औचित्यजन्यचमत्कारतत्त्वप्रधाना।

इन तीनों प्रकार की समीक्षाओं को कश्मीरी आचार्य क्षेमेन्द्र का विशेष योगदान है। उन्होंने न केवल काव्य के प्राण औचित्य और काव्य की आत्मा चमत्कार का विशद विवेचन किया है अपितु काव्य के आत्मभूत रसादितत्त्वों के साथ इन दोनों का सामञ्जस्य भी स्थापित किया है। यहां इन काव्यसमीक्षाओं का विवेचन करने के साथ साथ इनमें औचित्य एवं चमत्कार इन दोनों तत्त्वों को समाविष्ट करने का आग्रह किया जा रहा है।

१. आत्मतत्त्वप्रधाना समीक्षा

आचार्य मम्मट के पहले भरत, भामह, वामन, आनन्दवर्धन और क्षेमेन्द्र के द्वारा प्रवर्तित रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य और चमत्कार ये सात काव्यसिद्धान्त प्रचलित हो चुके थे। वर्तमान समीक्षक इनको काव्यसिद्धान्त न कह कर काव्यसम्प्रदाय नाम से अभिहित करते हैं। उन आचार्यों ने काव्यान्तर्वर्त्ती स्वाभिलषित किसी एक तत्त्व को काव्य की आत्मा माना और उसे काव्य में सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया। उन्होंने काव्य में उसी उसी तत्त्वविशेष की अनिवार्यता और अपरिहार्यता स्वीकार की। उदाहरणार्थ—**न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते**[1] कहने वाले आचार्य भरतमुनि ने रस को ही आत्मस्थानीय माना और दूसरे तत्त्वों को काव्य में गौण स्थान प्रदान किया। उनके मतानुयायी **रससत्त्वे काव्यसत्त्वम्** और **रसाभावे काव्यत्वाभावः** जैसी अन्वयव्याप्ति

---

१. भरतनाट्यशास्त्र ६, ३२ वृत्ति।

औचित्यजचमत्कारतत्त्वप्रधाना समीक्षा को वर्तमान समालोचना में स्थान देने की महती आवश्यकता है। इस परिष्कृत समीक्षापद्धति का निर्माण आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, विश्वेश्वर कविचन्द्र, पण्डितराज जगन्नाथ, छज्जूराम शास्त्री, वागीश्वर विद्यालङ्कार, डा० रेवाप्रसाद एवं डा० कृष्णकान्त चतुर्वेद आदि प्राचीन और नवीन आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित विचारों के आधार पर किया गया है।

इस औचित्य और चमत्कार के विशेष महत्त्व को स्वीकार किये बिना संस्कृतसमीक्षा में परिपूर्णता आनी सम्भव नहीं है। संस्कृतसमीक्षा को सर्वाङ्गीण और व्यापक बनाने के लिए इस ओर विद्वानों का अधिक ध्यान आकर्षित करने के लिए यह विनम्र प्रयास किया गया है।

वैशाखी १३, ४, २००४ रामप्रताप वेदालङ्कार

जम्मू तवी

त्रिविधां काव्यसमीक्षां रामप्रतापनिर्मितां।
द्रष्टुमर्हन्ति विद्वांसः कुतूहलविवर्धिनीम् ॥

—प्रो० वेदकुमारी घई

प्रकाशिका

पूर्वाचार्या, संस्कृतविभागः,

जम्मू विश्वविद्यालय

त्रिविधा काव्यसमीक्षा

संस्कृत काव्यशास्त्र में तीन प्रकार की समीक्षा प्रचलित है—

(१) आत्मतत्त्वप्रधाना

(२) अङ्गतत्त्वप्रधाना एवं

(३) औचित्यजन्यचमत्कारतत्त्वप्रधाना।

इन तीनों प्रकार की समीक्षाओं को कश्मीरी आचार्य क्षेमेन्द्र का विशेष योगदान है। उन्होंने न केवल काव्य के प्राण औचित्य और काव्य की आत्मा चमत्कार का विशद विवेचन किया है अपितु काव्य के आत्मभूत रसादितत्त्वों के साथ इन दोनों का सामञ्जस्य भी स्थापित किया है। यहां इन काव्यसमीक्षाओं का विवेचन करने के साथ साथ इनमें औचित्य एवं चमत्कार इन दोनों तत्त्वों को समाविष्ट करने का आग्रह किया जा रहा है।

१. आत्मतत्त्वप्रधाना समीक्षा

आचार्य मम्मट के पहले भरत, भामह, वामन, आनन्दवर्धन और क्षेमेन्द्र के द्वारा प्रवर्तित रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य और चमत्कार ये सात काव्यसिद्धान्त प्रचलित हो चुके थे। वर्तमान समीक्षक इनको काव्यसिद्धान्त न कह कर काव्यसम्प्रदाय नाम से अभिहित करते हैं। उन आचार्यों ने काव्यान्तर्वर्ती स्वाभिलषित किसी एक तत्त्व को काव्य की आत्मा माना और उसे काव्य में सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया। उन्होंने काव्य में उसी उसी तत्त्वविशेष की अनिवार्यता और अपरिहार्यता स्वीकार की। उदाहरणार्थ—**न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते**[1] कहने वाले आचार्य भरतमुनि ने रस को ही आत्मस्थानीय माना और दूसरे तत्त्वों को काव्य में गौण स्थान प्रदान किया। उनके मतानुयायी **रससत्त्वे काव्यसत्त्वम्** और **रसाभावे काव्यत्वाभावः** जैसी अन्वयव्याप्ति

---

१. भरतनाट्यशास्त्र ६, ३२ वृत्ति।

और व्यतिरेकव्याप्ति मानते आये हैं। ऐसा ही दृष्टिकोण (अर्थात् अलङ्कारसत्त्वे काव्यसत्त्वम् इत्यादि) दूसरे आचार्यों का अलङ्कारादियों के सम्बन्ध में रहा है। काव्यात्मत्व नामक जातिधर्म रसादि व्यष्टियों में पृथक् पृथक् रहता है। सम्भवतः रससम्प्रदाय से प्रेरणा प्राप्त करके अश्वघोष और कालिदास सदृश कवियों ने रसप्रधान काव्य और नाटक लिखे थे। अलङ्कारवादियों ने जब अलङ्कार को आत्मा के स्थान पर प्रतिष्ठित किया था तो उनसे प्रभावित होकर किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित जैसे अलङ्कारप्रधान महाकाव्य लिखने की प्रवृत्ति विकसित हुई। इसी प्रकार दसवीं शती से लेकर अब तक काव्य में चमत्कारतत्त्व का बोलबाला रहता आया है। इसलिए इस युग में चमत्कारप्रधान अन्योक्तियाँ और मुक्तक काव्य लिखे जाते रहे हैं। यह भी सम्भव है कि भरत, भामह और क्षेमेन्द्रादि विद्वानों ने तत्तत्कालवर्तिनी काव्यधारा को पहचान कर उनके आधार पर अपने काव्यात्मसम्बन्धी विचार लिखे थे। सामाजिक विचारों का कवि और आचार्य दोनों पर प्रभाव पड़ता है।

मम्मटोत्तरकाल में रस, अलङ्कार, और ध्वनि इन तीन सम्प्रदायों का विशेष प्रचलन रहता आया है। वामन की रीति, कुन्तक की वक्रोक्ति और क्षेमेन्द्र के औचित्य और चमत्कार को समुचित मान्यता नहीं मिली है। काव्य में रसादि-तत्त्वों की अनिवार्यता को भी चुनौती दी जाने लगी है। सिद्धिचन्द्रगणि और वागीश्वरविद्यालङ्कार जैसे कतिपय आचार्यों ने काव्य के रसतत्त्व के विकल्प के रूप में अलङ्कार, भाव और चमत्कारतत्त्व को सुझाया है।[1] इनका अभिप्राय यह है कि यदि कविता में रस, भाव, अलङ्कार और चमत्कार इनमें से कोई एक भी

---

१. (क) अदोषत्वे सति सगुणत्वे सति स्फुटालङ्काररसान्यतरवत्त्वं काव्यत्वमिति फलितार्थः।

काव्यप्रकाश १, ४ काव्यप्रकाशखण्डनटीका

(ख) रसभावचमत्कारान्यतमप्राणपेशलः।
काव्यं शब्दार्थसन्दर्भोऽलौकिकानन्दसुन्दरः॥

वागीश्वरविद्यालङ्कारकृतवैदिकसाहित्यसौदामिनी २, ६

तत्त्व रहता है तो कविता कविता कही जा सकती है। मम्मटपूर्ववर्ती आचार्यों में रसादियों में से किसी एक ही काव्यतत्त्व के प्रति विशेष अनुराग पाया जाता है तो दूसरे आचार्यों के अनुसार इनमें से किसी एक भी तत्त्व के होने पर काव्य हो सकता है। एक के रहने पर दूसरे तत्त्वों की अनिवार्यता समाप्त हो जाती है। इन दोनों ही पक्षों में काव्य में किसी एक ही या एक भी तत्त्व को काव्य की आत्मा माना गया है।

उपर्युक्त रसादिसम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों की यह धारणा प्रकट होती है कि जब रसतत्त्व को काव्य की आत्मा माना जाता है तो वही काव्य होता है रसातिरिक्त अलङ्कारादि नहीं। यही बात अलङ्कारादि के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। किन्तु रस, भाव, अलङ्कार और चमत्कार इन सभी को काव्य की आत्मा मानने वाले आचार्यों का कहना है कि इन चारों में से एक ही नहीं किन्तु चारों ही अलग अलग काव्य की आत्मा हैं इसलिए इनमें से यदि कोई एक भी शब्दार्थों में रहता है तो वहाँ काव्य बना रहता है। अतः रस ही काव्य की आत्मा है ऐसा न मानकर रस भी काव्य की आत्मा है ऐसा मानना चाहिए। इस उभयपक्षीय समीक्षा के अन्तर्गत आने वाले आचार्य काव्य के किसी एक ही तत्त्व को विशेष महत्त्व देते हैं। रसादिकाव्यतत्त्वों में आत्मत्व रूप जातिधर्म (साधारण धर्म) रहने और उसी की प्रधानता मानने के कारण इसे आत्मतत्त्वप्रधाना समीक्षा कहा है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने रससिद्ध काव्य में औचित्य को चमत्कार का कारण तथा चमत्कार को काव्य की आत्मा बताया है।[1] इस समीक्षा को व्यष्टिप्रधाना भी कहा जा सकता है।

दोष—(१) इन आचार्यों का दृष्टिकोण एकाङ्गी एवं अतिवादी है। क्योंकि इसके पहले पक्ष में काव्य के सभी घटकतत्त्वों की ओर

---

१. (क) औचित्यस्य चमत्कारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना॥
औचित्यविचारचर्चा कारिका ३

(ख) न हि चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वं काव्यस्य वा काव्यत्वम्।
कविकण्ठाभरण ३, १ वृत्ति

ध्यान न देकर काव्य के एक ही तत्त्व को महत्त्व प्रदान किया जाता है। वस्तुतः रस, भाव, अलङ्कार और चमत्कार इन चारों की समष्टि का नाम काव्य है। इनमें से किसी एक ही तत्त्व के रहने से और दूसरों के न रहने से काव्य में अपूर्णता रहेगी। इसी कारण वर्तमान समय में संस्कृत और हिन्दी काव्यशास्त्र में प्रचलित समीक्षा में काव्य के सभी प्रसिद्ध घटकतत्त्वों को समान महत्त्व और समान स्थान दिया जाता है। इनको पृथक्-पृथक् इकाई मानते हुए भी इनको एक दूसरे के पूरक काव्याङ्ग मानकर काव्यसमीक्षा में इन सबका विचार किया जाता है।

(२) यद्यपि दूसरे पक्ष में रस, भाव, अलङ्कार और चमत्कार इन चारों तत्त्वों में से किसी एक के भी रहने पर काव्य होता है ऐसा मान लेना युक्तिसङ्गत है तथापि यदि काव्य में ये सारे तत्त्व उचित अनुपात से रखे जायें तो उसमें अधिक चमत्कार उत्पन्न होता है और उसे भी काव्य माना जाता है। दोनों ही स्थितियों में काव्य में काव्यत्व बना रहता है। केवल एक भी तत्त्व के होने पर काव्य मान लेने से उसमें दूसरे तत्त्वों के न होने का अभाव खटकता है। उत्कृष्ट काव्य में सारे ही काव्यतत्त्वों का समुचित समावेश अपेक्षित है।

(३) आचार्य भरतमुनि आदि के द्वारा प्रवर्तित रसादि-सम्प्रदायों में रसादितत्त्वों को अलग अलग आत्माओं के रूप में स्वीकार किया जाता है। जैसे एक पुरुषशरीर में एक समय में एक ही आत्मा रहती है वैसे ही शब्दार्थरूप काव्यशरीर में एक ही रसरूपी आत्मा रहेगी। एक आत्मा के रहते हुए उसके साथ अन्य अलङ्कारादि आत्मायें नहीं रह सकतीं। क्योंकि जहां एक आत्मा रहती है वहां अन्य आत्माओं का युगपद् रहना सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थं मेघदूतकाव्य के शब्दार्थरूप शरीर में रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य और चमत्कार इन सात तत्त्वों की स्थिति मानी जाये और उनमें से प्रत्येक को काव्य की आत्मा माना जाये तो एक ही काव्य में सात आत्माओं का अधिवास माना जायेगा। इस दोष से बचने के लिए रसादियों में से प्रत्येक को पृथक् पृथक् काव्यतत्त्व माना जाता है और उनको काव्य में समन्वित किया जाता है। इन रसादियों को काव्य की

आत्मा मानने या न मानने के विवाद में न पड़ कर उनको चमत्कार का कारण मान लेना चाहिए। कवि अपने काव्य में इनको चमत्कारोत्पत्ति के लिए रखता है।

(४) सात सम्प्रदायों में से प्रत्येक सम्प्रदाय में तत्सम्बद्ध एक तत्त्व को अङ्गी मान लिया जाता है और दूसरे तत्त्वों को उसका अङ्ग। तदनन्तर उसका दूसरे तत्त्वों के साथ अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उदाहरणार्थ रससम्प्रदाय में रस को अङ्गी मानकर शेष अलङ्कारादि तत्त्वों को उसका अङ्ग मान लेते हैं। यह अङ्गाङ्गिभाव उन आचार्यों के मध्य मतभेद का विषय रहा है। परिणामतः रसवादी आचार्य अलङ्कारवादी आचार्यों के दृष्टिकोण से सहमत नहीं देखे जाते। रसादितत्त्वों को पृथक् पृथक् काव्यतत्त्व स्वीकार कर लेने पर यह विसङ्गति स्वयमेव दूर हो जाती है। वस्तुतः रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि, औचित्य और वक्रोक्ति इन सबमें रहने वाली एवं अभिनवगुप्त द्वारा आविष्कृत चारुत्वप्रतीति ही काव्य की आत्मा है। यह विवादहीन एवं सर्वमान्य सिद्धान्त है।[1] यह मत मौलिक एवं चौंका देने वाला है। यह चारुत्वप्रतीति कभी रसौचित्य के द्वारा उत्पन्न की जाती है तो कभी अलङ्कारौचित्यादि से। वस्तुतः अकेले रस में भी चारुत्व को पैदा करने का सामर्थ्य है और अकेले अलङ्कारादि में भी तथापि रसौचित्यादि से ही निर्दुष्ट चारुत्वप्रतीति हुआ करती है। अतः कवि का सर्वोपरि कर्म है रसादि का औचित्य के साथ समुचित समन्वय करना।

(५) आचार्य वागीश्वरविद्यालङ्कार ने रस, अलङ्कार, भाव और चमत्कार इनमें से किसी एक तत्त्व के रहने पर भी काव्य में काव्यत्व माना है। इस मत से सहमत होते हुए भी इतना तो मानना ही पड़ता है कि यदि किसी काव्य में चमत्कारतत्त्व विद्यमान रहता है तो काव्य में परिपूर्णता आती है। इसलिए यह चमत्कार तत्त्व न केवल रस, भाव और अलङ्कार का विकल्प बन सकता है

---

१. यच्चोक्तम्—चारुत्वप्रतीतिस्तर्हि काव्यस्यात्मा स्यात् इति तदङ्गीकुर्म एवं नास्ति खल्वयं विवाद इति।

ध्वन्यालोक १, १३ काव्यविशेषः पर अभिनवगुप्तकृतलोचनटीका

अपितु इनके अतिरिक्त किसी और भी काव्यगततत्त्व का विकल्प बन सकता है। वस्तुतः रसादि चमत्कार के कारण हैं और चमत्कार कार्य है। कार्य की प्रधानता मानी जाती है कारण की नहीं। चमत्कार स्वयं काव्य की आत्मा है और रसादि उसके अङ्ग हैं अतः उसे रसादि का विकल्प नहीं मानना चाहिए। चमत्कार रसादि का विकल्प हो सकता है किन्तु रसादि उसके विकल्प नहीं हैं। काव्य का साध्य रसादि न होकर चमत्कार ही है उसी की सृष्टि करने में कवि को यत्नवान् होना चाहिए।

इस समीक्षा में उपर्युक्त दोषों के कारण वर्तमान काल में इसकी विशेष उपयोगिता नहीं रह गई है। परिणामतः भरतादि-प्रवर्तित इन काव्यसम्प्रदायों का काव्यसमीक्षा के प्रसङ्ग में उल्लेखमात्र कर दिया जाता है। इन सम्प्रदायों के प्रवर्तक और समर्थक आचार्यों के नामों, काव्यलक्षणों और तत्सम्बद्ध विचारों का वर्णन तो कर दिया जाता है किन्तु काव्य, नाट्य, मुक्तक और गद्यकाव्यों की व्यावहारिक समीक्षा में इनके काव्यलक्षणों को आलोचना का मानदण्ड नहीं बनाया जाता। यह समीक्षा आज की समीक्षा में पुरानी और अव्यावहारिक हो गई है। परन्तु फिर भी प्राचीन आचार्यों के आलोचनासम्बन्धी इन प्राचीन गहन विचारों को जानने के लिए इसका महत्त्व एवं उपयोगित्व स्वीकार किया जा सकता है।

२. अङ्गतत्त्वप्रधाना समीक्षा

शब्दार्थ, गुण, रस, अलङ्कार, रीति और ध्वनि आदि विभिन्न काव्याङ्गों अर्थात् काव्य के घटकतत्त्वों के मेल से ही काव्य की सर्जना की जाती है। इसमें इन सभी उपादानकारणों की प्रधानता होती है। इन तत्त्वों के आधार पर वर्तमान काल में प्रचलित इस काव्यसमीक्षा को अङ्गतत्त्वप्रधाना समीक्षा का नाम दिया जा सकता है। इन शब्दार्थादियों में अङ्गत्वरूपजातिधर्म (सामान्य धर्म) समानरूप से रहता है। किसी अकेले तत्त्व से काव्य का निर्माण नहीं होता इसलिए इसमें सभी तत्त्वों का समावेश किया जाना आवश्यक है। काव्य के सभी तत्त्वों पर निर्भर रहने के कारण यह समीक्षा समष्टिप्रधाना है।

आचार्य मम्मट ने अपने काव्यलक्षण में दोषराहित्य, गुण और अलङ्कारों को काव्य के उपादानतत्त्वों के रूप में माना है।[1] इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने दोषहीनता, रस, गुण, और अलङ्कार और रीति को काव्यवर्ती घटकतत्त्व माना है।[2] परवर्ती संस्कृतकाव्यशास्त्र को परम्परा में इन तत्त्वों को काव्य के उपादानतत्त्वों क रूप में स्वीकार किया जाता है। पाश्चात्य-काव्यशास्त्र में भी विभिन्न विद्वानों ने शब्दतत्त्व, अर्थतत्त्व, भावतत्त्व, बुद्धितत्त्व और कल्पनातत्त्व इन पाँच तत्त्वों को काव्य-तत्त्वों के रूप में मान्यता प्रदान की है। भारतोयकाव्यशास्त्र तथा पाश्चात्यकाव्यशास्त्र से प्रभावित आधुनिक संस्कृत और हिन्दी समीक्षक विद्वान् इन तत्त्वों को काव्य का उपादानतत्त्व या घटकतत्त्व मानते हुए अपनी काव्यसमीक्षा में इनको स्थान देते हैं। इनकी दृष्टि से काव्य में इन सभी तत्त्वों को पृथक् पृथक् घटकतत्त्व मानते हुए इनका पृथक् पृथक् भी उल्लेख करना चाहिए और इनके समन्वित रूप को ही काव्य मानना चाहिए। काव्य के इन सभी तत्त्वों से सम्पन्न काव्य ही काव्य कहलाने का अधिकारी होता है। इन तत्त्वों के अतिरिक्त काव्यों और नाटकों में अन्तः और बाह्य प्रकृति का चित्रण, घटनाओं में घातप्रतिघात आदि तत्त्व भी सम्मिलित किये जाते हैं। वर्तमान संस्कृतकाव्यशास्त्र और हिन्दीकाव्यशास्त्र के अध्ययन, अध्यापन और समीक्षालेखन में इसी पद्धति को अपनाया जाता है। मेघदूतकाव्य तथा उत्तररामचरित नाटक की आलोचना करते समय रस, अलङ्कार, गुण, रीति, दोष, प्रकृतिचित्रण, घातप्रतिघात आदि काव्यतत्त्वों को निर्दिष्ट कर उनके उदाहरणों के रूप में श्लोकों को प्रस्तुत किया जाता है। इनमें रहने वाले शृङ्गारादि रस, उपमा, अर्थान्तरन्यास और काव्यलिङ्गादि अलङ्कारों को खोजा जाता है। संस्कृतकाव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भरतभामहादिप्रवर्तित रससम्प्रदाय,

---

१. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावलङ्कृती पुनः क्वापि।

काव्यप्रकाश १, ४

२. वाक्यं रसात्मकं काव्यं दोषास्तस्यापकर्षकाः।

उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालङ्काररीतयः॥

साहित्यदर्पण १, ३

अलङ्कारसम्प्रदायादि इन नामों का उल्लेख नहीं है फिर भी आधुनिक समीक्षा में इन आचार्यों को अलग अलग सम्प्रदायों के साथ जोड़ने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। संस्कृतकाव्यशास्त्र के काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पणादि लक्ष्यलक्षणग्रन्थों में काव्यलक्षण, अलङ्कारलक्षणादि को अपने अपने उदाहरणों सहित दिखाया गया है। उन्हीं को आधार बनाकर वर्तमान काव्यसमीक्षा में उनके लक्षणों को उदाहरण प्रस्तुत कर स्पष्ट किया जाता है। इसके अतिरिक्त मम्मट और विश्वनाथादि आचार्य तो रसध्वनि के साथ अन्य तत्त्वों का अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध मान कर रसध्वनि को प्रधान तथा अन्य तत्त्वों को गौण मानते हैं परन्तु वर्तमान समीक्षक सभी काव्यतत्त्वों को समान महत्त्व प्रदान करते हैं।

दोष—इस समीक्षा का सर्वोपरि दोष यह है कि इसमें क्षेमेन्द्र प्रतिपादित औचित्य और चमत्कार इन दोनों सिद्धान्तों को समुचित स्थान नहीं प्राप्त हुआ है। औचित्य रससिद्धकाव्य का जीवन और चमत्कार का कारण है। यह औचित्य काव्य के सभी अङ्गों में रहने वाला व्यापक और जीवनाधायक तत्त्व है।[1] इन पदप्रभृति मर्मस्थलों में रहने वाला यह तत्त्व सकलकाव्य-शरीरव्यापी तत्त्व है।[2]

इनमें से प्रत्येक को मर्मस्थल कहने का यह अभिप्राय है कि जैसे एक मर्मस्थल पर चोट पहुँचने से समस्त शरीर और जीवन समाप्त हो जाता है वैसे ही काव्य और उसके जीवितभूत औचित्य की समाप्ति इनमें से किसी एक भी तत्त्व के विनाश से हो

---

१. औचित्यस्य चमत्कारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना॥
औचित्यविचारचर्चा कारिका, ३

२. प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्न्यथाशिषि।
काव्यस्याङ्गेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम्॥
एतेषु पदप्रभृतिषु स्थानेषु मर्मस्विव काव्यस्य सकलशरीरव्यापि जीवितमौचित्यं स्फुटत्वेन स्फुरदवभासते।
वही १० कारिका तथा वृत्ति

सकती है। मर्मस्थल अनेक होते हुए भी मर्म की स्थिति सब जगह एक ही है क्योंकि किसी भी मर्म पर कहीं से भी प्रहार होने पर जीवनलीला समाप्त हो जाती है। दोष की तरह अनौचित्य भी काव्यैकदेश को ही नहीं सम्पूर्ण काव्य को दूषित करता है। इसी प्रकार काव्य में चमत्कारतत्त्व का भी अत्यन्त महत्त्व है। क्षेमेन्द्र ने कहा है कि—

न हि चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वं काव्यस्य वा काव्यत्वम्।[1]

चमत्कारहीन कवि के भीतर कवित्व नहीं रहता अथवा चमत्कार रहित काव्य में काव्यत्व नहीं होता।

वस्तुतः इस समीक्षा में जैसे रस और अलङ्कार आदि को पृथक् तत्त्व के रूप में स्वीकार किया जाता है वैसे ही औचित्य और चमत्कार को भी अलग अलग तत्त्व के रूप में मान लेना चाहिए। आधुनिक समीक्षकों को इन दोनों को पृथक् पृथक् महत्त्व देना चाहिए। इसके आगे की यह बात है कि औचित्य और चमत्कार तत्त्व के महत्त्व और व्यापकता को देखते हुए अब यह परमावश्यक हो गया है कि इन रसादितत्त्वों के साथ औचित्य एवं चमत्कार का सम्बन्ध जोड़ना चाहिए क्योंकि ये सारे तत्त्व पहले औचित्य का अनुसरण करते हैं तदनन्तर उसे अपने साथ लेकर चमत्कार की सृष्टि करते हैं। रसादि, औचित्य तथा चमत्कार के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में आगामी तीसरी समीक्षा में विशेष विचार किया जा रहा है।

३. औचित्यजन्यचमत्कारतत्त्वप्रधाना समीक्षा

शब्दार्थ, रस, रीति, गुण, अलङ्कार, विभावादि तथा इतिवृत्त-काव्य और नाट्य के अङ्ग हैं इन अङ्गों में जब विवेकपूर्वक उचित अनुपात में औचित्यतत्त्व का समावेश हो जाता है तो इनको रसौचित्यादि नामों से अभिहित किया जाता है। काव्य और नाट्य में समाविष्ट इन रसौचित्यादियों से चमत्कार उत्पन्न होता है। औचित्यजन्यचमत्कार के विवेचन पर आश्रित इस समीक्षा को औचित्यजन्यचमत्कारतत्त्वप्रधाना समीक्षा नाम दिया

---

१. कविकण्ठाभरण ३. १ वृत्ति।

जा सकता है। इसमें चमत्कारतत्त्व का प्रधानता से विवेचन होने से यह चमत्कारप्रधाना है। इस औचित्यजन्यचमत्कार के रसौचित्यजन्य चमत्कारादि सकलभेदों में चमत्कारत्व नामक जाति-धर्म (सामान्यधर्म) रहता है। पण्डितराज जगन्नाथ ने कहा है—

लोकोत्तरत्वञ्च चमत्कारापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको जातिविशेषः।[1]

सामाजिक के हृदय में रहने वाला चमत्कार अनुभवसिद्ध जातिरूपलोकोत्तरतत्त्व है। चमत्कार में रहने वाला यह चमत्कारत्व एक जाति धर्म होने के कारण चमत्कार को विविधरूपता की सूचना देता है। यह रस, अलङ्कारादि तत्त्वों में समानरूप से रहता है। यह समीक्षा आनन्दवर्धन और क्षेमेन्द्र इन प्राचीन आचार्यों के मतों से प्रभावित होने के साथ साथ विश्वेश्वर कविचन्द्र, पण्डितराज जगन्नाथादि आचार्यों के मतों से भी मेल खाती है। किसी भी प्रकार की काव्यसमीक्षा में औचित्य और चमत्कारतत्त्व का विशिष्ट योग आवश्यक है। रसालङ्कारादि का अनुचित प्रयोग काव्यगत चमत्कार को नष्ट कर देता है। औचित्य काव्य का प्राण है और चमत्कार उसकी आत्मा है। जैसे प्राण और आत्मा से विहीन देह शवमात्र रहता है और उसका कोई उपयोग नहीं रह जाता वैसे ही औचित्य और चमत्कार से विहीन काव्य निरर्थक एवं अनुपयोगी माना जा सकता है।

इस समीक्षा के आधार पर कालिदासादि कवियों के मेघदूतादि काव्यों की आलोचना करते समय चमत्कार सम्बन्धी निम्नलिखित प्रमुख दस भेदों का अनुसन्धान करना चाहिए—

(१) रसौचित्यजन्यचमत्कार
(२) अलङ्कारौचित्यजन्यचमत्कार
(३) गुणौचित्यजन्यचमत्कार
(४) रीत्यौचित्यजन्यचमत्कार
(५) ध्वन्यौचित्यजन्यचमत्कार
(६) वक्रोक्त्यौचित्यजन्यचमत्कार

---

१. रसगङ्गाधर १, १ वृत्ति।

(७) पदाद्यौचित्यजन्यचमत्कार
(८) क्रियाद्यौचित्यजन्यचमत्कार
(९) विभावाद्यौचित्यजन्यचमत्कार
(१०) इतिवृत्तौचित्यजन्यचमत्कार ।

इस समीक्षा के अन्तर्गत आने वाले उपर्युक्त इन भेदों का निर्माण आचार्य आनन्दवर्धन एवं क्षेमेन्द्र के द्वारा दिखाये गये भेदों के आधार पर किया गया है । ध्वन्यालोक में आचार्य आनन्दवर्धन ने औचित्य के निम्नलिखित नौ भेद स्वीकार किये हैं—

(१) रसौचित्य, (२) प्रबन्धौचित्य, (३) वृत्त्यौचित्य,
(४) वाचकौचित्य, (५) सङ्घटनौचित्य, (६) वक्त्रौचित्य,
(७) वाच्यौचित्य, (८) विषयौचित्य एवं (९) अलङ्कारौचित्य ।

क्षेमेन्द्र ने उसी औचित्य के पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलङ्कार, रस, क्रिया और कारकादि २७ भेद बताये हैं तथा उन्होंने चमत्कार को निम्नलिखित दस प्रकार का बताया है—

(१) अविचारितरमणीय, (२) विचार्यमाणरमणीय,
(३) समस्तसूक्तव्यापी, (४) सूक्तैकदेशदृश्य,
(५) शब्दगत, (६) अर्थगत, (७) शब्दार्थगत,
(८) अलङ्कारगत, (९) रसगत, (१०) प्रख्यातवृत्तिगत ।

समीक्षा के लिए उपयोगी रसौचित्यजन्यचमत्कारादि भेदों में पहले रसादितत्त्वों का औचित्य तत्त्व के साथ जब समन्वय किया जाता है तभी चमत्कार अथवा काव्यसौन्दर्य की सृष्टि होती है। इस प्रकार औचित्यतत्त्व रसादितत्त्वों का पूरक तत्त्व है । रसादियों को यदि आत्मस्थानीय तत्त्व माना जाए तो औचित्य को प्राणतत्त्व मानना चाहिए। जैसे आत्मा और प्राण के सम्मिलित होने पर ही देहयात्रा चलनी सम्भव होती है वैसे ही काव्यगत रसादि में औचित्य के द्वारा प्राणप्रतिष्ठा हो जाती है और फिर काव्य में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। चमत्कार-सम्पन्न यह काव्य ही काव्य कहा जा सकता है। इस प्रकार काव्य में रसादि के साथ औचित्य का समन्वय होना आवश्यक है।

आचार्य विश्वेश्वरकविचन्द्र ने रसादि का चमत्कार के साथ कार्यकारणभावसम्बन्ध बताया है।[1] काव्यगत रसौचित्यादि का भी चमत्कार के साथ यही सम्बन्ध है। रसौचित्यादि कारण हैं और चमत्कार कार्य है।

काव्य में औचित्य का महत्त्व बताते हुए आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है वाच्य (कथावस्तु) और उसके वाचक (शब्दादि) को रसादिविषयक औचित्य की दृष्टि से जो योजना है वही महाकवि का मुख्य कर्तव्य है। रसादि को मुख्य रूप से काव्य का विषय बनाकर उसके अनुरूप शब्द और अर्थों को रचना करना यही महाकवि का मुख्य कर्म है।[2] इस स्थल पर उन्होंने औचित्य को महाकवि का कर्म ही नहीं बल्कि मुख्य कर्म कहा है। इससे यही प्रतीत होता है कि आनन्दवर्धन को दृष्टि में औचित्य का अन्य काव्य के तत्त्वों के साथ समावेश किया जाना आवश्यकतम एवं अनिवार्यतम कर्म है। महाकवि को महाकवित्व की प्राप्ति औचित्य के निर्वाह से हो हो सकती है। उसको प्राप्त करने का और कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसी प्रकार महामहोपाध्याय कुप्पूस्वामी शास्त्री का कहना है कि काव्यशास्त्र के सभी सम्प्रदाय औचित्य के साथ मिलने के लिए आतुर देखे जाते हैं—

ध्वनि, रस और उन्नय (अनुमिति, अनुमान) औचित्य में सम्मिलित होने के लिए दौड़ लगाते हैं। गुण, अलङ्कार और रीति सिद्धान्त वक्रोक्तिमय हैं अर्थात् वक्रोक्ति के अतिरिक्त

---

१. गुणं रीतिं रसं वृत्तिं पाकं शय्यामलङ्कृतिम्।
सप्तैतानि चमत्कारकारणं ब्रुवते बुधाः॥

चमत्कारचन्द्रिका प्रथमविलास, पृ० २-३

२. वाच्यानां वाचकानाञ्च यदौचित्येन योजनम्।
रसादिविषयेणैतत् कर्म मुख्यं महाकवेः॥

वाच्यानामितिवृत्तविशेषाणां ... ... महाकवेर्मुख्यं कर्म अयमेव महाकवेर्मुख्यो व्यापारो यद् रसादीनेव मुख्यतया काव्यार्थीकृत्य तद्व्यक्त्यनुगुणत्वेन शब्दानामर्थानाञ्चोपनिबन्धनम्।

ध्वन्यालोक ३, ३२ तथा वृत्ति

उनको पृथक् सत्ता नहीं है और वक्रोक्ति भी औचित्य में ही समाविष्ट हो जाती है।[1] साहित्य के समस्त उपादानों और उपकरणों में उसके काव्यरूपों और उसकी अनुभूति तथा अभिव्यक्ति में औचित्य की स्थिति बनी रहती है अतः रचनात्मक साहित्य और समीक्षात्मक साहित्य इन दोनों में ही औचित्य के विवेचन को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। काव्य के जिस अङ्ग में भी औचित्य का अभाव होता है वही अङ्ग चमत्कार का भङ्ग हो जाने से काव्य में अरुचि का कारण हो जाता है। ध्वन्यालोक के टीकाकार अभिनवगुप्त ने चारुत्वप्रतीति (चमत्कार) को ही काव्य की आत्मा बताकर इसका स्थान सर्वोपरि निर्धारित किया है।[2] चारुत्वप्रतीति (चमत्कारप्रतीति) रूप यह जातिधर्म (सामान्यधर्म) रसादिरूप सब प्रकार के काव्य में रहता है।

इस तीसरी काव्यसमीक्षा के आधार पर रसौचित्य के उदाहरण के रूप में निम्नलिखित श्लोकों की समीक्षा की जा सकती है :—

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनैः[3] इत्यादि उदाहरण में नायकनायिकागत समुचित रतिभाव की अभिव्यक्ति की गई है इसलिये यहां ध्वन्यौचित्यजन्य, शृङ्गाररसौचित्यजन्य, सङ्घटनौचित्यजन्य एवं विभावाद्यौचित्यजन्य चार प्रकार का चमत्कार है।

---

१. औचितीमनुधावन्ति सर्वे ध्वनिरसोन्नयाः।
गुणालङ्कृतिरीतीनां नयाश्चानृजुवाङ्मयाः॥

सम कन्सैप्ट्स ऑफ दी अलङ्कारशास्त्र के अन्तर्गत हिस्ट्री ऑफ औचित्य इन संस्कृत पोइटिक्स नामक प्रकरण डा० वी० राघवन्।

२. यच्चोक्तं चारुत्वप्रतीतिस्तर्हि काव्यस्यात्मा स्यात् इति तदङ्गीकुर्मः एवं नाम्नि खल्वयं विवादः।

ध्वन्यालोक १, १३ पर अभिनवगुप्तकृत लोचनटीका

३. ध्वन्यालोक ४, २ वृत्ति, साहित्यदर्पण १, ३ वृत्ति एवं काव्यप्रकाश ४, ३०.

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटम्[1] इत्यादि उदाहरण में अनौचित्य-प्रवर्तित रति होने के कारण शृङ्गाररसाभासजन्यचमत्कार है।[2] आचार्य मम्मट ने यः कौमारहरः,[3] इत्यादि जो उदाहरण दिया है वह औचित्यप्रवर्तितरति होने के कारण शृङ्गाररसौचित्यजन्य-चमत्कार का उदाहरण है। इसी प्रकार अलङ्कारौचित्यादि भेदों के उदाहरण अन्य काव्यों और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं। काव्य में औचित्य और चमत्कार के महत्त्व को इन परिकर श्लोकों में बताया है—

यथौचित्यनिर्वाहो लोकेऽस्मिन् क्रियते जनैः।
तथा विधीयते काव्ये विबुधैस्तैः कवीश्वरैः॥
रसाद्यौचित्ययुक्तं वै काव्यं सर्वैः प्रशस्यते।
तत्र स्थितमनौचित्यं मृष्यते न हि केनचित्॥
औचित्यजचमत्कारः प्रीतिं परां प्रयच्छति।
तस्मात् काव्येषु नाट्येषु कर्तव्यं तन्निबन्धनम्॥[4]

उपसंहार

आचार्य आनन्दवर्धन ने चारुत्वोत्कर्ष (चमत्कारातिशय) को वाच्य और व्यङ्ग्य के प्राधान्याप्राधान्य के निर्णय करने की कसौटी माना[5] है। जिसमें अधिक चमत्कार होता है वह प्रधान और कम चमत्कार वाला अप्रधान (गौण) हो जाता है। इसी प्रकार अभिनवगुप्त ने चारुत्वप्रतीति (चमत्कारप्रतीति) को काव्य की आत्मा कहा है और इस मत को विवादहीन बताया है।[6]

---

१. काव्यप्रकाश १, २.

२. सम्भोगाभासोऽभिव्यज्यते ··· ··· काव्यप्रकाश १, २ गोकुलनाथ उपाध्यायकृत विवरणटीका।

३. वही १, १.

४. चमत्कारविचारचर्चा १५१, १५५, १५६

५. चारुत्वोत्कर्षनिबन्धना हि वाच्यव्यङ्ग्ययोः प्राधान्यविवक्षा।
ध्वन्यालोक १, १३ वृत्ति

६. यच्चोक्तं चारुत्वप्रतीतिस्तर्हि काव्यस्यात्मा स्यात् इति तदङ्गीकुर्म एवं नास्ति खल्वयं विवाद इति। ध्वन्यालोक १, १३ वृत्ति

अलङ्कार में वाच्यचारुत्व और ध्वनि में व्यङ्ग्यचारुत्व रहता है ।[1]

वस्तुत: प्राचीन भरतादि आचार्यों से प्रवर्तित काव्य-सम्प्रदायों में जिन रसादियों को काव्य की आत्मा बताया जाता है वे स्वयं ही चमत्कार रूप हैं अथवा चमत्कार के कारण हैं। इसी चमत्कार के सौन्दर्य, चारुत्व और विच्छित्ति नाम हैं। सौन्दर्यमलङ्कार:— सौन्दर्य का नाम ही अलङ्कार है अथवा चमत्कृतिजनकत्वमलङ्कारत्वम् सौन्दर्योत्पादक होना ही अलङ्कार का धर्म है। रीति को सङ्घटनाविशेष भी सौन्दर्य की हेतु है। काव्यस्यात्माध्वनि:—काव्य की आत्मा ध्वनि है। यहां सारभूत तत्त्व सौन्दर्य माना जा सकता है। रसादि ये सभी तत्त्व शब्दार्थरूप काव्य में रहते हैं और चमत्कार के उत्पादक और अभिव्यञ्जक होते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त ने भी ध्वनि और अलङ्कारों को चारुत्व अर्थात् चमत्कार का हेतु बताया है ।[2] वस्तुत: यह चमत्कार ही काव्य का प्राण है इसी को आत्मा भी कहा जा

---

१. व्यङ्ग्यव्यञ्जकसम्बन्धतया ध्वने: ।

वाच्यवाचकचारुत्वहेत्वन्त: पातिता कुत: ॥

ध्वन्यालोक १, १३ वृत्ति

(क) वागर्थौ सचमत्कारौ काव्यं काव्यविदो विदु: ।

चमत्कारचन्द्रिका प्रथमविलास, पृ० २-३

(ख) स्वविशिष्टजनकता··· चमत्कारत्ववत्त्वमेव वा काव्यत्वमिति फलितम् । ··· काव्यजीवितं चमत्कारित्वं चाविशिष्टमेव ।

रसगङ्गाधर प्रथम आनन काव्यलक्षणप्रकरण

(ग) विशिष्टशब्दरूपस्य काव्यस्यात्मा चमत्कृति: ।

डा० वी० राघवन्—सम कन्सैप्ट्स आफ दी अलङ्कारशास्त्र पृ० २७०

२. चारुत्वहेतुश्च ध्वनि: ··· गुणालङ्कारव्यतिरिक्ताश्च चारुत्वहेतवश्च ।

ध्वन्यालोक १, १ अभिनवगुप्तकृतलोचनटीका

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटम्[1] इत्यादि उदाहरण में अनौचित्य-प्रवर्तित रति होने के कारण शृङ्गाररसाभासजन्यचमत्कार है।[2] आचार्य मम्मट ने यः कौमारहरः,[3] इत्यादि जो उदाहरण दिया है वह औचित्यप्रवर्तितरति होने के कारण शृङ्गाररसौचित्यजन्य-चमत्कार का उदाहरण है। इसी प्रकार अलङ्कारौचित्यादि भेदों के उदाहरण अन्य काव्यों और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं। काव्य में औचित्य और चमत्कार के महत्त्व को इन परिकर श्लोकों में बताया है—

यथौचित्यनिर्वाहो लोकेस्मिन् क्रियते जनैः।
तथा विधीयते काव्ये विबुधैस्तैः कवीश्वरैः॥
रसाद्यौचित्ययुक्तं वै काव्यं सर्वैः प्रशस्यते।
तत्र स्थितमनौचित्यं मृष्यते न हि केनचित्॥
औचित्यजचमत्कारः प्रीतिं परां प्रयच्छति।
तस्मात् काव्येषु नाटयेषु कर्तव्यं तन्निबन्धनम्॥[4]

उपसंहार

आचार्य आनन्दवर्धन ने चारुत्वोत्कर्ष (चमत्कारातिशय) को वाच्य और व्यङ्ग्य के प्राधान्याप्राधान्य के निर्णय करने की कसौटी माना[5] है। जिसमें अधिक चमत्कार होता है वह प्रधान और कम चमत्कार वाला अप्रधान (गौण) हो जाता है। इसी प्रकार अभिनवगुप्त ने चारुत्वप्रतीति (चमत्कारप्रतीति) को काव्य की आत्मा कहा है और इस मत को विवादहीन बताया है।[6]

---

१. काव्यप्रकाश १, २.

२. सम्भोगाभासोऽभिव्यज्यते ··· ··· काव्यप्रकाश १, २ गोकुलनाथ उपाध्यायकृत विवरणटीका।

३. वही १, १.

४. चमत्कारविचारचर्चा १५१, १५५, १५६

५. चारुत्वोत्कर्षनिबन्धना हि वाच्यव्यङ्ग्ययोः प्राधान्यविवक्षा।
ध्वन्यालोक १, १३ वृत्ति

६. यच्चोक्तं चारुत्वप्रतीतिस्तर्हि काव्यस्यात्मा स्यात् इति तदङ्गीकुर्म एवं नास्ति खल्वयं विवाद इति। ध्वन्यालोक १, १३ वृत्ति

अलङ्कार में वाच्यचारुत्व और ध्वनि में व्यङ्ग्यचारुत्व रहता है।[1]

वस्तुत: प्राचीन भरतादि आचार्यों से प्रवर्तित काव्य-सम्प्रदायों में जिन रसादियों को काव्य की आत्मा बताया जाता है वे स्वयं ही चमत्कार रूप हैं अथवा चमत्कार के कारण हैं। इसी चमत्कार के सौन्दर्य, चारुत्व और विच्छित्ति नाम हैं। सौन्दर्यमलङ्कार:— सौन्दर्य का नाम ही अलङ्कार है अथवा चमत्कृतिजनकत्वमलङ्कारत्वम् सौन्दर्योत्पादक होना ही अलङ्कार का धर्म है। रीति को सङ्घटनाविशेष भी सौन्दर्य की हेतु है। काव्यस्यात्माध्वनि:—काव्य की आत्मा ध्वनि है। यहां सारभूत तत्त्व सौन्दर्य माना जा सकता है। रसादि ये सभी तत्त्व शब्दार्थरूप काव्य में रहते हैं और चमत्कार के उत्पादक और अभिव्यञ्जक होते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त ने भी ध्वनि और अलङ्कारों को चारुत्व अर्थात् चमत्कार का हेतु बताया है।[2] वस्तुत: यह चमत्कार ही काव्य का प्राण है इसी को आत्मा भी कहा जा

---

१. व्यङ्ग्यव्यञ्जकसम्बन्धतया ध्वने:।
वाच्यवाचकचारुत्वहेत्वन्त: पातिता कुत:॥

ध्वन्यालोक १, १३ वृत्ति

(क) वागर्थौ सचमत्कारौ काव्यं काव्यविदो विदु:।

चमत्कारचन्द्रिका प्रथमविलास, पृ० २-३

(ख) स्वविशिष्टजनकता···चमत्कारत्ववत्त्वमेव वा काव्यत्वमिति फलितम्। ··· काव्यजीवितं चमत्कारित्वं चाविशिष्टमेव।

रसगङ्गाधर प्रथम आनन काव्यलक्षणप्रकरण

(ग) विशिष्टशब्दरूपस्य काव्यस्यात्मा चमत्कृति:।

डा० वी० राघवन्—सम कन्सैप्ट्स आफ दी अलङ्कारशास्त्र पृ० २७०

२. चारुत्वहेतुश्च ध्वनि: ··· गुणालङ्कारव्यतिरिक्ताश्च चारुत्वहेतवश्च।

ध्वन्यालोक १, १ अभिनवगुप्तकृतलोचनटीका

सकता है और इसका अन्य रसादि तत्त्वों के साथ जन्यजनकभाव सम्बन्ध है। ये निम्नलिखित परिकर श्लोक हैं—

तत्त्वान्तराणि काव्ये तु भवन्तु न भवन्तु वा।
विस्मयगर्भश्चमत्कारः स्थिरं काव्यस्य जीवितम्॥
चमत्कारात्मके काव्ये तदङ्गानि रसादयः।
अङ्गीभूयोपकुर्वन्ति पुष्णन्ति तञ्च सर्वदा॥
जन्यतेऽसौ चमत्कारस्त्वलङ्कारररसादिभिः।
जन्यजनकभावो वै तन्मध्ये सुप्रतिष्ठितः॥

आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा तथा कविकण्ठाभरण में औचित्य और चमत्कार तत्त्वों का अत्यन्त विशदरूप से प्रतिपादन किया है। क्षेमेन्द्रप्रवर्तित चमत्कारसम्प्रदाय का समर्थन उत्तरवर्ती विश्वेश्वर कविचन्द्र, पण्डितराजजगन्नाथ एवं हरिप्रसाद ने पूरी तरह से किया हैं। किन्तु क्षेमेन्द्रोत्तरवर्ती अधिकांश आचार्यों तथा आधुनिक समीक्षकों ने क्षेमेन्द्र के विचारों से पूरा लाभ नहीं उठाया। पाश्चात्य आलोचकों ने भी औचित्य का महत्त्व माना है। अरस्तू ने दृश्य, घटना, काल, भाषा के प्रयोग में औचित्य का महत्त्व माना है। लाँजाइनस ने शब्दप्रयोग के औचित्य को कविता का प्राण कहा है। हौरेस ने घटना, छन्द, भाषा आदि के औचित्य को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इसी प्रकार दान्ते, पोप, मैथ्यू आर्नल्ड, आई० ए० रिचर्ड्स भी इसका महत्त्व स्वीकार करते हैं। महाकवि जौन कीट्स की प्रसिद्ध उक्ति—ए थिंग ऑफ ब्यूटी इज जोय फौर ऐवर से सौन्दर्य या चमत्कार की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। इस आधार पर यह व्याप्ति बनाई जा सकती है औचित्यजचमत्कार – सत्त्वे काव्यत्वसत्त्वमौचित्यजचमत्काराभावे काव्यत्वाभावः। संस्कृत एवं हिन्दी काव्यशास्त्र में प्रवर्तित वर्तमान समीक्षापद्धति में क्षेमेन्द्रानुमोदित विचारों का समावेश करते हुए औचित्यजन्यचमत्कारप्रधाना इस समीक्षा को अपनाने की आवश्यकता है।

---

१. चमत्कारविचारचर्चा १३१ का०, १६ पृ०; १३४, १६; १४२, १७.